कविता म जीने का सुख/छविनाथ मिश्र

स्वर समवेत
कलकत्ता
700 007

। छविनाथ मिश्र
कविता में जीने का सुख/छविनाथ मिश्र की कविताएँ
आवरण/मदन सूदन
स्वर समवेत, ६, तनसुक लेन, कलकत्ता-700 007
द्वारा प्रकाशित/भागचन्द सुराना, सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स,
२०५, रवीन्द्र सरणी, कलकत्ता-700007 द्वारा मुद्रित
प्रथम संस्करण जनवरी 1987
मूल्य बीस रुपए
KAVITA ME JEENE KA SUKH
POEMS BY CHHAVI NATH MISHRA

की स्मृति में

—छविनाथ मिश्र

कविता की तलाश मे

कविता अपने सरोकारों की भूमिका में इतिहास की अनगढ़ता को तराशती चलती है। इतिहास जिस बिन्दु पर अपने कुछ खास मुद्दों एव तेवरो के चलते ठहर सा जाता है, वहां से उस नये मोड का सकेत और आधार देती हुई शब्दो को नये अर्थानुशासन से जोड़ती रहती है।

मै जिस कविता की बात कर रहा हूँ, वह अपनी अमूर्त-अदृश्य भूमिका मे शायद अपरिभाषित है—उसे कुछ काव्य प्रतिमानो के माध्यम से विशिष्ट चिन्तन धाराओं एव परिभाषाओं के चौखट मे कसकर परखने या परिभाषित करने की कोशिश भले ही एक ऐतिहासिक ज़रूरत हो किन्तु सरचना गठन, वस्तु, बुनावट, रूप रग, भाषा और छन्द-बन्ध को ही टोहते टटोलते रहने तक कविता *कहीं नहीं होती। तब भी उसके ढाँचे को ढोते रहना* इतिहास की अनिवार्य मजबूरी है।

इस रोशनी में अपनी दहलीज़ के बाहर और भीतर कुछ अपेक्षाओं और उपेक्षाओं के बावजूद उगते सूरज की किरणो मे नहाया-सा स्नेह प्यार, जितना भी मिला है

तथा उसे पाने के लिए जिन मानसिक यत्रणाओ स जूझना पडा है—वही सब कुछ मेरी कविता या काव्य चेतना के केन्द्रीय प्रतीक एव बिम्ब रहे हैं। उन्ही के माध्यम से म अपनी बौद्धिक एव रूमानी अन्तश्चेतना अथवा मनश्चेतना की भूमि पर अस्तित्व क काव्यात्मक पक्ष से ही जुडकर समय बोध क साथ अपनी सम्भावनाओ को उकेरता रहा हूँ।

वस्तुत, तह दर तह सच को खोलते जाने पर यदि किसी अन्तिम सच की आहट मिलती है या सम्भव है तो म कहना चाहूँगा कि अपनी कविचेतना और अपने आम आदमी क एहसास को मुक्त एव सहज करने की दिशा म अपने लिए कविता को ही एक मात्र ऐसा सच मानता हूँ जिस अपने परिवेश एव समय की तमाम विसगतिया तथा जीवन की अर्थहीन स्थितियो क विरुद्ध खडा करक मुझे एक मामूली और मकूल आदमी होने की लडाई लडते रहना बेहद जरूरी लगता है।

यही कुछ ऐसे बिन्दु हे जिनके साक्ष्य में म जिस काव्य-स्पन्द को घटनाओ दृश्यो, परिदृश्यो और कुछ बाता-विचारो के भीतर से पकडने की कोशिश करता हूँ उसे परिचित प्रतीका-बिम्बो क माध्यम से सम्प्रेषित करते समय कविता से सीधे सवाद जैसी भूमिका में हुआ करता हूँ, किन्तु तब भी लगता ह कही कुछ छूट रहा है या कुछ टूट नही रहा है।

बहरहाल इस प्रकार अपनी समझ के हाशिए क बीच ही कविता की सस्कृति की खोज क साथ कविता में जीने का सुख मेरे होते रहने का मर्म भी है और मजबूरी भी है, लेकिन जीवन के विविध प्रसगो में यह सुखानुभूति कविता की तलाश भर है जिसे मने जिया है। इस सुख म आपकी हिस्सेदारी के साथ कविता की तलाश अब भी जारी है।

छविनाथ मिश्र

अनुक्रम

* १९६१ स १९८६ तक की चुनी हुइ रचनाएँ

नन्हे बच्चे की दस्तक

पिछली रात का अँधेरा
न जाने कब पिघल गया
समय का अनाम दर्द
        रोशनी में बदल गया
सुबह-सुबह ही
पड़ोसी के नन्हे बच्चे ने दस्तक दी
        दरवाज़ा खुल गया
सामने—
चन्द्रमल्लिका के खिले पीले फूलों जैसी
कोमल धूप में
बैठा है आँखें मूँदे गाय का एक सफ़ेद बछड़ा
सूरज की ओर मुँह किए
कविता में जिए गए—
        क्षणों के सादृश्य में उभरे
        किसी बिम्ब की तरह—
दूब के पत्तों पर टिके ओस-कण
ढुलकने लगे हैं
कुहासे के रेशे रेशे टूटने लगे हैं
कितना कुछ
भीतर ही भीतर धुँधला गया
बहुत कुछ धुल गया
नन्हे बच्चे ने
दस्तक दी—
दरवाज़ा खुल गया। ०

कविता में सोचते हुए दफ्तर तक

सुबह का होना
मेरे यहाँ होने
या न होने के एहसास से
कहीं नहीं जुड़ा है—
सुबह जहाँ भी होती है
जरूर होती है—उसे होना है
और मुझे
घटनाओं के अदृश्य रेशों से बुने सलीब को
अपने समय तक ढोना है
हर सुबह अपने ढंग से
सिर्फ अपने लिए होना है
इसी बात को
इस अन्दाज में कहूँ तो—
मेरे कवि और मेरे आम आदमी के बीच का फासिला
जो भी हो
दहलीज़ से बाहर कदम रखते ही
शुरू हो जाता है
कविता में सोचने का सिलसिला
जानता हूँ,
नून तेल लकड़ी का सवाल
हल करने के लिए
कविता में सोचते हुए
हर रोज दफ्तर तक पहुँचने का रास्ता
तै करना
कितना खतरनाक है
यानी—
महानगर की भीड़ से
सही सलामत निकलते हुए
ट्रेनों, ट्रामों, बसों में
तैरती मँडराती

तमाम क़िस्म की
सजीव और यांत्रिक आवाज़ें —
शोर-ग़ुल सुनते सहजते हुए
भीतर ही भीतर एक ख़ामोशी जब शब्द बुनने लगती है
तभी ज़ोर से फेंकी गई
कई-कई
भारी भरकम आवाज़ों से
दिमाग़ में लहराता
सोच का दरिया—
एक किनारे से दूसरे किनारे तक थरथराता है
कोई प्रतिमान चरमराता है
अचानक सामने साइकिल से रिक्शा टकरा जाता है
रिक्शावाले के गाल पर तड़ाक तड़ाक—
'साला, अन्धा है !
देखकर नहीं चलाता'
एक सामूहिक शोर उछलता है
'रास्ता छोड़ो, आगे बढ़ो
हो गया जो होना था'

रेलवे प्लेटफ़ार्म से
या पुलिस चौकी के पास वाले मैदान से
आ रहा है तैरता हुआ
इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद का नारा
कहीं कुछ हुआ
या होने वाला है
पीछे से कोई किसी को पुकारता है—
शायद ग्वाला है
'अरे कन्हैया भैंस किसकी है ?
कितने में लिए'—
और मुझे लगा
उभरती कविता की हरी दूब
एक साथ कई पालतू दुधारू जानवर चर गए

तब भी—
सोचना ज़रूरी है
कविता की थरथराहट को
भाषा देना भी ज़रूरी है
यानी सार्वजनिक मौत और दुर्घटनाओं की—
तिजारत करने वाले—
हवा के रुख का नाजायज़ फ़ायदा उठाने वाले—
मौसम के खिलाफ़ सोचना
बेहद ज़रूरी है
दुर्घटनाएँ किसी भी क्षण हो सकती हैं
मसलन कविताएँ कसाइखाने से
'खलासी टोला' होती हुई
'कल्पतरु' तक आते आते ग़ायब हो सकती हैं
बहरहाल कविता की गैर मौजूदगी में
जिन्दगी या कीमती चीजें
कौडी के मोल बिक सकती हैं—
और यही कुछ सोचते सोचते
पान की दूकान पर
छोड़ आया नया छाता
इस दूसरी चिन्ता में
तीसरी ट्रेन भी चीखती हुई भाग गई
सिगनलवाले केबिन से कोई
लाउडस्पीकर के ज़रिए बार-बार
एक ही जुमला फेंकता है—
'गाड़ियाँ देर से आएँगी।'
शायद कुछ हुआ—क्या पता।
क्या करूँ इस सापेक्षता का—
ऐसे में दफ्तर तक पहुँच जाना
यकीनन् एक और ज़रूरी बात है
कविता में सोचते हुए हर रोज
दफ्तर तक पहुँचने का रास्ता तै करना
कितना खतरनाक है। ०

कापालिकों की शोभा-यात्रा
बनाम समग्र कविता

जड़ों से पखुड़ियों तक
समय के अनुशासन में जब एक क्रान्ति होती है
तब वृन्तों पर
फूल खिलने की कविता
पूरी होती है
इर्द-गिर्द एक गमक तैरती है
आदमी के दिमाग़ में
खुशबू की भाषा जन्म लेती है
और यहाँ से शुरू होती है
कविता की सही
सहज यात्रा—
गवाह सिर्फ़ वह आदमी है
जो हमारे संवेदना की पकड़ से बाहर लापता है
जिसे पता है
कविता और एटम का क्या रिश्ता है।

फूल जिस कविता की छन्दमूर्त्ति है
उसकी पहचान दर पहचान उकेरते रहने तक
कविता की कोई मूर्त्ति नहीं बनती

लेकिन फूल की बुनावट में
उसकी पहचान के तमाम अदृश्य रेशे तने होते हैं
जो आकाश के परमाणुओं से बने होते हैं
फूलों को तोड़ना और परमाणुओं को तोड़ना
अलग अलग दो घटनाओं के तेवर हैं
किन्तु अनायास या जानबूझकर
तोड़ लिए जाने पर
फूल किसी भी भाषा, मजहब या तहजीब में
आदमी या किसी देव प्रतिमा के गले की माला बनते हैं
या चरणों में पड़े-पड़े
अपने होने का कोई सार्थक शब्द बुनते हैं
और एटम
प्रयोगशालाओं में थिरकते-थिरकते
बम बन जाते हैं
आदमी की नासमझी पर पौ फटने से पहले
फट जाना चाहते हैं—
जुलूस के आगे-आगे चलते हुए
आदमी की मुक्ति यात्रा
कविता में जीने की यात्रा है
मुण्डमाला की तरह परमाणु बमों की माला पहने
कापालिका की शोभायात्रा
मनुष्यता और कविता को तोड़ने की यात्रा है

बहरहाल जब दोनों टूटते हैं
तब जो होता है
वह सिर्फ सन्नाटा होता है
जिसकी मौजूदगी की थरथराहट पकड़ने के लिए
वहाँ न कोई कापालिक होता है
न कोई आदमी होता है
होती है किसी भले आदमी का इन्तिज़ार करती हुई
सन्नाटे के ओठों पर कोमल हँसी की तरह फूटती हुई—
एक समग्र कविता । ०

ख़ून से लथपथ एक शब्द एक बिम्ब

समय की आँखों में लम्हा दर लम्हा
एक सपना अचानक
पागलपन की आँच में पिघल गया
एक ज्वालामुखी उगल गया
उँगलियों में बँधा हुआ
सुनहली सुबह का संगीत
हरी दूब की हथेलियों पर टिका हमलती समय
न जाने कब फिसल गया
और—
पलक गिरते ही
इतिहास के भीतर से भागता हुआ
एक बदहवास क्षण—
स्वयं निषाद चेतना में जीता हुआ
क्रौंच की चीख़ को
श्लोक में रूपान्तरित करता हुआ
एक अनाम आदिम शोक की लहरों पर
थरथराता हुआ
कहीं पीछे दूर बहुत दूर छूट गया
ख़ून से लथपथ एक शब्द, एक प्रतीक, एक बिम्ब टूट गया
और
अभी-अभी
समय की क्रूरतम दृष्टि से टकराकर
एक और
सुर्ख़ रोशनी का गायत्र छन्द टूट गया

रक्त की एक-एक बूँद का
उफान झलती हुई भीड़ का संवेदन—

और हताश-निराश
बार-बार जन्म लेता हुआ शाश्वत भारत
एक बार फिर गोलियों से छलनी
नये भारत की दूसरी लाश के करीब
और बहुत करीब से गुज़रता हुआ—
'यह क्या हुआ, कैसे हुआ—
उसके ओठों पर लिखी
असंख्य आवाज़ों का सैलाब
भावनाओं की भूमि पर
टूटते भूगोल की शक्ल में लहराता है
और भीतर ही भीतर बुदबुदाता है—
—भारत तो रक्त सने
नफ़रत में डूबे
भूगोल के किसी टुकड़े का नाम नहीं
भारत किरण लिखे दिलों की रोशनी है
भाईचारे की
अनन्नासी अगहनी कोमल धूप का नाम है
आग-आग होता हुआ
समरसता और कविता की
मुक्तकेशी आनन्दमयी यात्रा का नाम है
भारत एक सार्वभौम अद्वैत विराम है
भारत कमल की पंखुड़ियों जैसे फैले
पूरबी क्षितिज के माथे पर अंकित
अदिति-बिन्दी है,
अनिर्वाण दीप्ति है—
भारत उगते दहकते जवाकुसुमी सूर्य बिम्ब का नाम है
और दरवाज़े दरवाज़े रोशनी बिखेरने
रगशब्द लिखने के अन्तरंग संकल्पों की
विश्वभारती छवि है
प्यार की पवित्रतम नदी में नहाकर
निकली

गंगाजली तहज़ीब
और मानवीय संस्कृति का
ज़मीनी हस्ताक्षर है
भारत रेखाओं से घिरी भूमि का दायरा नहीं, भूमा का स्वर है—
भारत दिमाग़ में खौलते-उबलते
गुमराह ख़यालों का नहीं
सीने में धड़कते
गुलाब महज़ मज़हब का नाम है

अँधेरा चीरकर
आग की लपटों के भीतर से
उभरती-उफनती हुई
वन्देमातरम् से जयहिन्द तक बहती हुई—
रक्तधारा है
एक अखण्ड इन्क़िलाब का नारा है

भारत,
चन्द बेसुरी धुनों का शोर नहीं
सूली पर टँगी यादों का गमकता सरगम है
शहीदों के ख़ून से जले
जगमगाते दीपों के उजले-उजले
दर्द का संगम है
अहिंसा ही जिसका धर्म है, मर्म है

नये इन्सानी ख़ून के हर क़तरे में त्रिस्थित
दुधमुँहे विश्व जीवन की
सुचेतनामयी बुनावट को उधेड़ो मत
दोस्तो, दुश्मनो—
सुनो
ऋषियों मुनियों, कवियों सूफ़ियों
साधुओं-सन्तों की वाणी से बने-बुने
हिन्दुस्तान के तार-तार
तान-तान कर
कोई और ताण्डव तान छेड़ो मत। ०

मैं और चीज़ें

कभी कभी लगता है
चीज़ें हैं और नहीं भी हैं
मैं उन्हें कोई नाम
या अर्थ देना चाहता हूँ—

    और
    अनगिनत प्रकाश वर्षों की दूरी तक
    उनके होने के एहसास
    और अपनी तलाश को जारी रखना चाहता हूँ

यानी
मैं कभी शून्य में लटका हुआ होता हूँ
कभी शून्य से परे
कई-कई शून्यों में भटक जाता हूँ
शून्य और
अ शून्य के दरम्यान
जब सचमुच मैं कहीं होता हूँ
तब चीज़ों के अर्थ खुलने लगते हैं
खुशबू के परमाणु
पूरे आकाश में तैरने लगते हैं
सोच के सिलसिले बनने लगते हैं—

    मैं टूटते-टूटते सहज हो जाता हूँ
    चीज़ें अपनी बारीक बुनावट की हद तक
    पारदर्शी हो जाती हैं

और तब
कविता में खुलते हुए
मेरे होने के तमाम अर्थ
बेहद अच्छे लगते हैं। ०

यादों के आईने में महानगर

मेरे महानगर
मेरे दोस्त, मेरे हमसफर!
तुम मेरे अनाम अनकहे क्षणों के
चश्मदीद गवाह हो—
यह नहीं सकता मेरे जुर्म की जो भी प्रकृति रही हो
या सज़ा की जो भी भाषा रही हो
लेकिन बार-बार लौट आया हूँ तुम्हारे ड्रैदखाने में
और यादों के आइने में
उभर आए हैं कई कई बिम्ब—
    भीड़ की बाँहों में
    कसा-कसा तुम्हारा बदन
    अचीन्हे रिश्तों में बँटा हुआ
    तुम्हारे प्यार का क्षण
    गुलमोहर के फूलों जैसे
    सुर्ख सुर्ख ज़ख्मों का दर्द, चुभन
    हर रंग में दहकता है तुम्हारा चेहरा
    गमकती है तुम्हारी साँस
मैं लम्हा दर लम्हा काट रहा हूँ अपने भौतिक समय की दूरी
तुम जवान हो रहे हो महल दर महल
पनप रहे हो नगर दर नगर
मेरे दोस्त,
मेरे हम सफर।
    तुम्हारे जिस्म की खुशबू है
        या तुम्हारी आँख का जादू
        पता नहीं—
    तुम्हारे साथ अपना होना बेहद अच्छा लगता है
लोग कहते हैं—
तुम्हारी सुबह लहूखोर होती है

दुपहरें बेदर्द, बेरहम
शामें थकी-थकी उदास बोझिल
और रातें मासल, खूबसूरत
मुक्त मन से बाँटती हैं देहगन्ध
तुम शायद उन्हें नही जानते

वे तुम्हे, अपना दोस्त, हमसफर कुछ नहीं मानते
उन्हें क्या मालूम
तुम्हारी आँख से जो टपकता है बूँद-बूँद
शराब है या लहू
आँसू है या जहर

मेरे दोस्त, मेरे हमसफर !
तनी हुई मुट्ठियो और जुलूसो की कतारो
जिन्दाबाद-मुर्दाबाद के तमाम नारों के बीच
तुम सचमुच कभी कभी
क्रान्ति नायक लगते हो
बाता बातो मैं
बिखर जाते हैं—
राजनीति के रग बिरगे शब्द
टूटने लगता है तुम्हारे सडकनुमा सीने पर
बूट और बुलेट का व्याकरण
और दूसरे ही क्षण
मर्करी रोशनी के छोटे-छोटे दायरो मैं
फूटने लगते हैं
खुशरग कहकहे
कोई कुछ भी कहे—
तुम लाजवाब, लाभिमाल हो
मेरे महानगर
मेरे दोस्त मेरे हमसफर
तुम मेरे अनाम अनकहे क्षणो के
चश्मदीद गवाह हो । ०

कविता ईश्वर से भी बड़ी

मेरे दोस्त, मेरे हमदम !
    तुम्हारी कसम
आकाश मेरे अस्तित्व को शब्द देता है
मेरे समय को लय देता है
हवा मेरी जिजीविषा को भाषा देती है
मेरे जीने की शर्त का
परिभाषा देती है
आग मेरे होने की प्रक्रिया को
पहचान देती है
एक प्रतिमान देती है
पानी चाहे सागर का हो
या किसी नदी का हो
या फिर किसी की आँख का हो
उसकी हर बूँद
मेरी प्यास को
मेरी तलाश का
नए आयाम देती है
माटी की गंध मुझे एक नाम देती है

मेरे दोस्त मेरे हमदम !
    तुम्हारी कसम
शब्दों ने मुझे बूढ़े बाप की तरह
काँपते हाथों से सहलाया है
भाषा ने—
ममतामयी माँ की तरह
मुझे प्यार की दूधिया रोशनी में नहलाया है
और कविता की संस्कृति में

जीने का मन्त्र पढ़ाया है
मेरे दोस्त, मेरे हमदम।
तुम्हारी कसम
कविता मेरे लिए एक कवच है
मेरे होने जैसा ही मच है
वह केन्द्र से परिधि तक तैरता हुआ
एक शब्ददेही कम्पन है
आपस में टकराते बिम्बों को
उजागर करने की कोशिश में
युद्ध झेलता हुआ एक दरपन है

कविता न तो बन्दूक है
और न मशीनगन है—
लेकिन तिलमिलाती है
तो अँधेरे के आततायी आदमखोर
मुखौटों को भून देती है
करोड़ों हताश निराश लोगों को
नई जिन्दगी देती है
देश और काल को खून देती है—
बार-बार इतिहास के पन्ने आवाज़ देते हैं—
कविता जब नशे की तरह उभरती है
तब शराबखानों के तमाम आबगीने टूट जाते हैं
कविता जब बाहर से भीतर उतरती है
तब तमाम आइनाखाना के
आइने टूट जाते हैं
मेरे दोस्त, मेरे हम दम।
तुम्हारी कसम—
कविता जब किसी के पक्ष में
या किसी के खिलाफ
अपनी पूरी अस्मिता के साथ खड़ी होती है
तब वह
ईश्वर से भी बड़ी होती है। ०

रोशनी अपनेपन का एहसास

कुछ लोग
अँधेरे में
साजिश दर साजिश बुनते हैं
कुछ लोग—
एक क्रान्ति से दूसरी क्रान्ति का रास्ता चुनते हैं
और बीच के लोग
कहते हैं—
अँधेरा चाहे जितना भी सुखद हो
न जाने क्या
रास नहीं आता
अँधेरे में—
आदमी की शिनाख्त मुश्किल है
वह रोशनी के अभाव में
बेरस है
बुज़दिल है
दरअस्ल, रोशनी भूख है प्यास है
रोशनी
अपनेपन का एहसास है। ○

शब्द-क्रान्ति

शब्द जब मुखौटों से अलग
छन्दों की रोशनी में
किसी हमदर्द दोस्त की तरह
हमारे करीब होते हैं
तब हम
कितने खुशनसीब होते हैं

कलमकश हो या मेहनतकश
सभी शब्दों से जुड़े हैं
हम एक दूसरे के सामने
युयुत्सु मुद्रा में
शब्दों की बुनियाद पर ही खड़े हैं
जहाँ हर मुद्दे पर
अपनी-अपनी हिस्सेदारी के सवाल जुड़े हैं

समय को बाँटने की ज़िम्मेदारी
शब्दों की नहीं—
हमारी है

दरअस्ल, शब्दों का न तो कोई धर्मक्षेत्र है
और न कोई कुरुक्षेत्र
यह तो सिर्फ़ हम हैं—
जो शब्दशोषी चेहरे ओढ़े हुए
शब्दों की आड़ में
एक शब्द की ओर से
दूसरे शब्द के ख़िलाफ़ लड़ रहे हैं

और शब्द क्रान्ति की भूमिका में
बख़ौफ़ एक खेमे से दूसरे खेमे तक टहल रहे हैं
मालूम नहीं—
यह कैसा फ़लसफ़ा है
जिसके हर लफ़्ज़ पर हमारे हिस्से का आसमान ख़फ़ा है
फिर भी
शब्द कविता में
मनुष्य होने की यन्त्रणा तराशते हुए
सलीब दर सलीब झेलते टँगे रहते हैं
लेकिन जब भी
किसी हमदर्द दोस्त की तरह
हमारे क़रीब होते हैं
हम बेहद ख़ुशनसीब होते हैं। ०

फैले हुए हाथ

मेरे इन फैले हुए हाथों पर
यदि तुम्हें
कुछ लिखना है
तो मेरे देश का नाम लिख दो
अगर कुछ
देने का इरादा है
या फिर यों ही
बेवजह कुछ रखना है
तो एक मुट्ठी आग रख दो—
मैं उसके ताप से
अपने देश के लिए
अपनी कविता के लिए
एक भाषा गढ़ना चाहता हूँ—
इन फैले हुए हाथों का अर्थ है,—
जीना चाहता हूँ। ०

शब्द विद्ध समय : एक मारीच गन्ध

जब कभी
मेरे पास समय नहीं होता—
मैं समय की तलाश का स्वप्न बुनता हूँ
तमाम बिम्ब की ध्वनियों से
टकराता हूँ, टूटता हूँ
और आकाश काँपता है
कुहासे के कच्चे बारीक रेशों की तरह

ध्वनियों की भीड़ से
एक शब्दनुमा चरित्र निकालकर
मैं उसे एक नाम देता हूँ
शब्दों के भीतर भीतर
आकाश दर आकाश प्रतीकों में बाँधता हूँ
बिम्बों की थरथराहट में पकड़ता हूँ
एक बिम्ब से
दूसरे बिम्ब की ओर दौड़ता हूँ
एक प्रतीक से तोड़कर दूसरे प्रतीक से जोड़ता हूँ—
लेकिन वह किसी—

कस्तूरी मृग की तरह निरन्तर भाग रहा है
शब्दों से बिंधा हुआ समय
कभी कभी जब खामोशी ओढ़कर
मरने का अभिनय करता है
तब शब्दों के केन्द्र में कोई अनुकम्पन नहीं होता
और आकाश काँपता है—
कुहासे के कच्चे बारीक रेशे की तरह

मैं कई रंगों के मुखौटे लगाकर
अपनी पकड़ के भीतर
पूरे आकाश को मथता हूँ
समय बेतहाशा चीखता है
शब्दों की टकराहट से
न तो किसी सार्थक शब्द का होना महसूस होता है
और न सही समय के होने का एहसास होता है
मैं प्रचलित और सार्वजनिक शब्दों के
एक लम्बे जुलूस के साथ
समय की तलाश में
घटनाओं के सौन्दर्य का बखान करता हूँ
समय के तेवर की
एक धुँधली पहचान करता हूँ
तब तक मेरी समझ में
वह किसी शिकारी के गिरफ्त में आ चुका होता है
या फिर मेरी आँखों के सामने
मेरी दिनचर्या में मर चुका होता है—

मेरे इर्द-गिर्द
समय के अदृश्य नथुनों से निकलती हुई एक मारीच गन्ध
शब्दों से शब्दों तक फैल जाती है
मेरी आवाज हवा में टँग जाती है
मेरा दम घुटने लगता है
और आकाश काँपता है
कुहासे के कच्चे बारीक रेशे की तरह। ०

सुनो कविता !

मुझे पता नहीं—
तुम कब
और क्या मुझसे जुड़ा
न कोई प्रमाण है न कोई गवाह
सिर्फ इतना पता है—
जब कभी भी
तुम मेरे भीतर उतरने लगती हो
मैं आकाश होने लगता हूँ
अपनी वाङ्मय नीरवता के केन्द्र में

तुम्हें एक अनाहत लय की तरह महसूस करता हूँ
और समय के
आदिम अनुकम्पना में जीने लगता हूँ
धीरे धीरे
मेरी शिराओं में
तुम्हारे स्पर्श की अनुभूति
थिरकने लगती है
मेरा अहम्
हवा के परमाणुओं की तरह
संगठित होने लगता है
तुम्हारे ताप के दबाव में
विच्छुरित होने लगता हूँ
पोर-पोर
टूटने लगता है
और एक अदृश्य आग का छन्द बन जाता हूँ
मेरी पिण्डहीन भूमिका पर
तुम अनायास पिघलने लगती हो
मैं किसी अशान्त महासागर की तरह
मचलने लगता हूँ—
अचानक तुम्हारी ईश्वरतमा प्रकृति
सिमटने लगती है
मेरे प्राणों में
शब्द स्पर्श, रूप रस
और गन्ध की तरह धड़कने लगती है
मैं धरती के धैर्य
और इतिहास की तरह तुम्हें सहज लेता हूँ
सुनो कविता!
तुम मेरे समय
और इतिहास की इन्द्रतमा चेतना हो—
प्रतिकृति हो
मेरे बोध और विवेक की
अग्निरम्यतमा संस्कृति हो। ०

अन्तर्यात्रा

अँधरे का रीछ
क्षितिज के उस पार

किसी बेनाम दरख्त पर चढ़ गया
और मैं
आँख खुलते ही ट्रांजिस्टर ऑन कर देता हूँ
हाथ-मुँह धोकर
चाय के इंतज़ार में
'फ़ैज़' का एक क़ता गुनगुनाता हूँ—
तेरा जमाल निगाहों में लेके उट्ठा हूँ
निखर गई होगी फ़ज़ा तेरे पैरहन की सी
नसीम तेरे शबिस्ताँ से हो के आई है
मेरी सहर में महक है तेरे बदन की-सी—
कमरे में
रोशनदान से छनकर आती किरणें
उजागर कर रही हैं कैलेण्डर पर
तारीखों में बटा समय

खिड़कियाँ खुलती हैं
और आँखें आकाश में लटकी
रोशनी की तस्वीर पर टिक जाती हैं
एक खूबसूरत फ़ीरोज़ी सुबह
सामने बिछे
हरे-हरे कागज़नुमा मैदान पर
किरणों से लिख रही है समय का दस्तावेज़
मैं भीतर ही भीतर
एक लम्बी दूरी तै करता हुआ
अपने गाँव के सीमान्त पर
निर्वाक खड़ा हूँ—
मेरे इर्द-गिर्द
सीवानों, मैदानों में
न जाने किसने आँक दिया है हरियाली का समुद्र
आस-पास के गाँव पुरवे
दिख रहे हैं छोटे-छोटे द्वीपों की तरह
आहिस्ता आहिस्ता

जाने पहचाने तमाम चेहरे उभरते हैं—
देखता हूँ सभी बदराए आकाश के नीचे
समर्पित हैं नए क्षणों में जीने के लिए
बराबर-बराबर हिस्सों में
एक दूसरे का दर्द बाँटने के लिए
मैं किसी भाषाहीन मुसाफिर की तरह
चुपचाप देख रहा हूँ—
सारा गाँव टाँकी हाशिए वाले खेतों की सतह पर
लिख रहा है श्रम की ऋचाएँ
रात का लहँगा फाड़कर पसरने वाला सन्नाटा
नए सूरज के स्वागत में
कर रहा है मंत्रोच्चार
रोशनी का तेवर पहचान कर
चलने लगी हैं हवाएँ—
और तभी
'अंशु'—पत्नी—की आवाज़
कानों से टकराई
मैं चौंक पड़ता हूँ—
'चाय तैयार है आ जाओ'
सामने पलँग पर
'अनुपम' लेटे-लेटे फीडिंग बोतल से पी रहा है दूध
और नन्ही 'ऋचा' नींद की गोद में
शायद देख रही है कोई सपना
उसके ओठों पर तैर रही है
एक अपापविद्ध मुस्कान
और मैं अपनी आँखों में तैरते हुए
हरियाली के समुद्र के साथ
सामनेदीवारपर टँगे भारतके नक्शे के भीतर धँसता हुआ
रसोई घर की ओर बढ़ गया
अँधेरे का रीछ
बीते मेरे क्षणों को सूँघकर
क्षितिज के उस पार किसी बेनाम दरख्तपर चढ़ गया। •

दुश्मन की तलाश : आइना तोड़ते हुए

दोस्तो,
गुस्से में आइना तोडना
कोई बहुत बडी बात नही है
लेकिन आइना होना
एक अलग बात है—
जिसे हम तोडना चाहते हैं
वह शायद
आइने में नही
अपने भीतर टूटता है
हमारी आँखों के सामने जो टूट रहा है
वह शब्दों का एक सिलसिला है
और जो हमारी समझ में टूट रहा है
वह एक ऐसे जिस्म का मामला है—
जिसे हमने एक लम्बे समय तक महसूस नही किया
और न तो जिया
जिसे हमने अभी तोडा है

वह सिर्फ़ एक मामूली आईना है
बिम्ब तो हमारे भीतर उतर गया
लगता है—
हम आइना तोड़ते हुए जो तोड़ रहे हैं—
उसकी भाषा नहीं—
केवल परिभाषा टूट रही है
यह सब कुछ वहम भी हो सकता है
लेकिन
यदि यह सही है
तो फिर तमाम बिम्ब
मूल बिम्ब की पारिभाषिक पहचानें हैं
और संभवतः वही टूट रही है
ख़ैर इसे न भी मानें
तब भी देखने-समझने का काम सचमुच बुरा नहीं है
क्या तोड़ना है
क्या टूटता है
इसका हिसाब पीछे कर लेंगे
फ़िलहाल आइना तोड़ने में ही हमारी दिलचस्पी है
ग़नीमत है—
बहुत कुछ टूटने के बावजूद
एक ताज़ा आत्मीय बिम्ब
सामने बिलख रहा है
हम एक समझदार हाथी की तरह
उसे सूँड़ में उठाकर
अपनी पीठ पर रख लें
या समझ में न आए
तो किसी निरंकुश साँड़ की तरह
सींगों से कोंचते हुए
आगे बढ़ जाएँ
और मवेशीख़ाने के सदर दरवाज़े पर
अपने-अपने दिमाग़ों में छिपे
असली दुश्मन की तलाश करें। ०

अँधेरे की कैद में

स्याह मुखौटों की भीड़ में
खो गई है
हमारी अस्मिता—पहचान
किसी आदिम कालीन सभ्यता के अवशेष जैसे
लग रहे हैं हमारे घर मकान
            जुलूस दर जुलूस—दिशाहीन
            तलाश दर तलाश—लक्ष्यहीन
बदरंग हो गए हैं—
रोशनी बाँटने वाले तमाम चहरे
बाहर से भीतर तक
एक हंगामा ढो रही हैं सुबहें
और आवाजों के जंगल में
न जाने कहाँ
गुम हो गई है शाम—
            धुन्ध और अँधेरा ओढ़कर
            चल रहे हैं हमारे आगे पीछे
            तीर-तरकश के साथ
            कुछ वक्ततराश
उनके दिमागों में एक साथ
कई कई सुनहले मृगदेही मारीच
                भर रहे हैं छलाँग
दूर कहीं—
आसमान में थरथराती हुई
किसी अन्तरंग लय के
तमाम खुशनुमा सिलसिले
टूट चुके हैं
            और हम
बदहवासी की हद तक चीखने लगे हैं। ०

महाभारत की आखिरी शाम

[आपातकालीन प्रसंग]

आज मैं समय के उस बिन्दु पर खड़ा हूँ
जहाँ मेरे सामने
एक बूढ़ा इतिहास बेतहाशा हाँफ रहा है
गाण्डीव क्षितिज बुरी तरह काँप रहा है
एक क्षयमुखी काल-खण्ड
आँख मूँद कर
लाशों के ढेर पर
ले रहा है विराम
और भयानक आर्त्तनाद उड़ेल रही है—
लहूलुहान आकाश के कन्धों से उतरती हुई
एक आहत शाम

वृद्ध इतिहास की आँखों में
तैर रहा है एक सर्वनाशी युद्ध
अठारह दिनों तक दिशाओं को चीरते हुए
सांवर्तक अग्नि से
एक महादेश को झुलसते हुए
असंख्य बाण बुझ चुके हैं

टूटे शिखर, औंधे पड़े हैं तमाम रथ
शब्दहीन हो गए हैं शंख
किसी अदृश्य लोक में
देहान्तरित हो रहे हैं—द्रोण दुर्योधन कर्ण, जयद्रथ
शून्य में निर्निमेष न जाने क्या देख रहे हैं जनार्दन
विषाद-ग्रस्त दिख रहे हैं अर्जुन

सात्यकि गिन रहे हैं
मरे अश्वों की वल्गाएँ

दूर बहुत दूर
समय की अभिशप्त भूमिका में
विलाप कर रही हैं महारथियों की विधवाएँ
सूर्य अपनी वैवस्वत चेतना की साक्षी में
रक्त की नदी लिख रहा है

शिविरा से शिविरा तक
एक बेनाम सन्नाटा टहल रहा है
कहीं कोई अश्वत्थामा-अँधेरा बुन रहा है—
एक खतरनाक साज़िश

बाणविद्ध पितामह भीष्म
अन्तिम प्रणाम की प्रतीक्षा में टूट रहा है
पूरे कुरुक्षेत्र के आयतन पर
महाभारत की एक स्नेहवती प्रेरणा
केश बिखराए चीख़ रही है
और
एक सामयिक कौन्तेय सवदन से
सर टकराती हुई
अपने मृतपुत्रों के कटे सर माँग रही है—
गाण्डीव एक बार फिर थरथराता है
अश्वत्थामा के माथे की मणि
बाहर निकल पड़ती है
और वह दुर्भेद्य अँधेरा ओढ़कर भाग जाता है
उत्तरा का गर्भस्थ शिशु
द्रोणपुत्र का ब्रह्मास्त्र झेलकर
गर्भनाल को कँपाता हुआ मुस्कराता है
धृतराष्ट्र क्षणों के भीतर ही भीतर
चुकती हुई एक गान्धारी रात
समय के उसी बिन्दुपर आकर ठहर गई है
जहाँ एक बूढ़ा इतिहास
बेतहाशा हाँफ रहा है
गाण्डीव क्षितिज बुरी तरह काँप रहा है। ०

कविता में जीने का सुख

समय कोई भी हो
अगर वह शब्दों से शब्दों तक जुड़ी हुई
आग को तोड़ देती है
तो आकाश का होना व्यर्थ लगता है
हवा, खुशबू लिखना बन्द कर देती है
संवादों के सिलसिले
टूटने लगते हैं
    और तब
    रचना का कोई क्षण
    गहराई की हद तक
    रोशनी टटोलता है
या कुछ ऐसा भी होता है—
जब किसी व्यक्तिगत अँधेरे में
कोई अनायास डूबने लगता है
तब कविता में जीना
बेहद अच्छा लगता है

समय कोई भी हो
अगर वह किसी छन्द या आयाम से
अलग उभरने लगता है
तो भीतर ही भीतर
समूचा वाङ्मय उदास हो जाता है
कविता कहाँ भी—
किसी रग में

बुझी-बुझी सी लगती है
और सही पहचान के तमाम संकेत
दिमाग़ी धुन्ध की नदी में धँसने लगते हैं—
और तब
यात्रा के दौरान
किनारे किसी नाव के बँध होने का एहसास
सामयिक एकान्त से जूझता हुआ—
दूर-दूर तक तैरता है
अथवा
कुछ ऐसी स्थिति में या इससे अलग
जब एक सामूहिक चीख़ के बावजूद
आँखों में
बेपनाह सन्नाटा उगने लगता है
तब कविता में जीना
बेहद अच्छा लगता है

इतिहास कोई भी हो
अगर वह पेशेवर गवाह की तरह
जीने लगता है—
तो अगले क्षणों के स्वागत में
कोई संकट रचता है
या अपने इर्द-गिर्द
आतंक बुनता है
कभी कभी किसी कोने से
उछाल देता है तोड़ कर
अपने अन्तरंग आकाश का एक नुकीला टुकड़ा
—आईने टूट जाते हैं
बिम्ब आपस में टकराने लगते हैं
तब कविता में जीने का सुख
बाहर से भीतर की ओर फैलने लगता है
और कविता में जीना
बेहद अच्छा लगता है। ०

आग बाँटने का कलमबन्द दस्तावेज़

एक समय ऐसा भी था
हमने आग को
छन्दा में वाँधा था
हमारी शिराओं में आग की नदी बहती थी
आग जब कहीं नही मिलती थी
हमने उसे उलीचा था
बाँटा था—
वह सिर्फ़ हमारा समय था
जब आग की प्राजलता का नाम कविता था

सूर्य उसका छन्द-पुरुष था
और आकाश उसका पिता था
हमारी दहलीज़ों पर ऋचाओं का पहरा था
मन्त्रविद्ध समय
कभी नहीं आग का मोहताज था—
अँधेरे के खिलाफ़
हमने पहली बार आवाज़ बुलन्द की थी
तब हमारे उन पुरखों का राज था
जिन्होंने आग से आग रचने की घोषणा की थी
और आकाश में
थरथराती हुई जिजीविषा की साक्षी में
आदिगन्त कांपता हुआ एक शब्द आग लिखा था
एक समय ऐसा भी था
एक समय यह भी है
आज आग हमारे इर्द-गिर्द
निष्कम्प है—बुझी है—
हम उसे हवा में एक लम्बी भीड़ पर
उछाल कर
साबित करना चाहते हैं
'यह आग दिखावटी है'

सब्र से काम लें—
सही आग की तलाश में
कुछ लोग रात-दिन व्यस्त हैं
कुछ आग को आग न रहने देने के लिए युद्धरत हैं
और आग के बिना
त्रस्त है—एक पूरा देश
भीड़ में शामिल
हर मुट्ठी का नुमाइशी आक्रोश—पथरा गया है
पीले चेहरों पर उभरी हुई
मशालनुमा सुर्खियाँ चीखती हैं—
क्रान्ति का समय आ गया।

हम राख के ढेर हो गए हैं
हमारा कोई सवाल
आग की भाषा में नहीं तराशा गया है
आग की तिजारत करने वाले
दरअसल कमीनों ने
हमारी ज्वालामुखी आग को
दो हिस्सों में विभाजित कर दिया
एक का नाम भूख
एक का नाम आग रख दिया
और हमारी आँखों में अँधेरा झोंककर
आग की चेतना को छीन लिया
हमारे पास तो अब केवल शब्द रह गया है
इसे भी छीन लेने की साज़िश में
हमारे चेहरों पर
सुनहली क्रान्ति का मुखौटा मढ़ दिया गया है—
हम जानते हैं
जिन्हें आग की कोई ज़रूरत नहीं
उन्होंने बन्द कर रक्खा है फ्रिज में
उन्हें डर है
आग कहीं हद से न गुज़र जाए
और जिन्हें भर पेट आग चाहिए
उनके चेहरों पर
भूख के शब्द उग आए हैं

[जो खाली जगह को भरने की
निहायत जंगली और आदिम कोशिश का अक्स है]

भूख हमें भीड़ के मुँह में डालकर
मिटती नहीं
और आग आसमान में काँपते हुए

असंख्य परमाणुओं को जन्म देकर
कभी बुझती नहीं—

आग हमारी रचना
और चेतना का समिद्ध इतिहास है
फिलहाल इतिहास के नाम पर
जो हमारे पास है
वह आयातित है, आरोपित है
उसे पीठ पर लादे
हम आग की तलाश में भीतर से टूट गए हैं

हम अच्छी तरह जानते हैं—
आग से रेखांकित दायरे के बाहर पाँव रखते ही
आग बाँटने का हमारा क़लमबन्द दस्तावेज़
अँधेरा फ़रोश रहनुमा जैसे लोग चुरा ले गए
हमें याद है—
वह भी एक समय था
जब हमने बची-खुची आग को सरे आम बेचा था—

समय अब भी है
समय का संकेत है—
आग पीढ़ी दर पीढ़ी आग ही रहती है

फिर तो आग जिसकी माँ हो
और समूची पृथिवी जिसकी प्रतिमा हो
—लानत है उसके बेटे आग के लिए हाथ फैलाएँ
दोस्तो,
आग शब्दों के भीतर सोई है
आओ उसे भाषा दें-जगाएँ—
जिसे कभी
हमने अपना रक्त पिलाया था
एक समय ऐसा भी था
हमने आग को
छन्दों में बाँधा था
हमारी शिराओं में आग की नदी बहती थी। ०

ानस' और अपनी शताब्दी क बीच

नी शताब्दी की ऊँची इमारत के
ा हिस्स पर खडा हूँ
' नीचे स ऊपर तक टँगी निगाहों में
ही अनाम अजनबी वस्तु का
म बनकर उभर रहा हूँ—
मुझे साफ साफ दिख रहा है
समय क इर्द-गिर्द
चहल कदमी कर रहा है
वर्दीधारी एक हथियारबन्द बौना
चारों ओर तैनात है सन्नाटे का पहरा
चहारदीवारी के बाहर
समय का कोई हमशक्ल
भागा जा रहा है कन्धे पर बिठाए आदिम कुहरा
से भीतर ही भीतर
ती हुई दिशाएँ—
रे में टटोल रही हैं अपने होने का एहसास
दिशाहीन आकाश
कामगन्ध से आक्रान्त
रोशनी और राशन की तलाश के बहाने
हिरण्यवर्णा दक्षकन्याओं को सूँघ रहा है
—
ा क महासागर से
हिस्ता-आहिस्ता उग रहा है एक छन्द-पुरुष
देर पहले
भी समय था
उजागर हो रही है

गुलाब की टहनी से लिखी—
एक दिगन्तव्यापी कविता
कमल के पत्तों पर थिरक रही है
प्रत्यूषवती मंगल बेला
और पद्मकोष में बन्दी अँधेरा
बन गया न जाने कब
रोशनी की वर्णमाला
सूर्य-प्रिय
बाँट रही
रोशनी
सूर्यवंशी क्षणों के अन्
श्रद्धा-शील, सत्कार
वात्सल्य स्नेह प्यार की पारदर्
उभर रहा है—
एक किरण मंडित परिवेश
धीरे धीरे एक पूरा देश
एक सूर्यमुखी भीड़, प
एक चरित्र, एक लोक, एक मान
एक विश्वास
तैरने लगता है धूप की

और
मुझे साफ साफ दिख रहा है
मैं जहाँ था वहाँ नहीं
उस ज़मीन पर खड़ा
जो पाँव के नीचे से
खिसक रही है—
सामने दिख रहा है
धरती को रौंदता हुआ
सफेदपोश बौनों का जुलूस
कन्धों पर लटके हैं लाखों इन्द्रध
तीर की नोकों में बँधी हैं
रंग-बिरंगी झंडियां

हवा में हिल रहे हैं खाली तरकश
मंच के ऊपर मंच
मंच के भीतर मंच
कोई नहीं स्वीकारता है—
किसी राघवेन्द्र की भूमिका
कहीं नहीं दिखता
पथराई अहल्याओं को उबारने का यत्न
और धनुष तोड़ने की प्रतिज्ञाएँ
मुट्ठियों में बाँध
वापस जा रहे हैं—
मुखौटा लगाए तमाम पराजित, परिचित चेहरे
पंचवटी से
पंचशील तक
चीख रहा है छद्म और कोई अदृश्य मारीच—
स्वर्ण मृग का लोभ
लक्ष्मण-रेखा के टूटने की मजबूरी
महातपा वैदेही चेतना की
क्षितिजों पर कराहती आवाज़
जटायु बोध
और दशमुख आक्रोश—
इनके बीच
नहीं दिख रहा है कोई धनुर्धर
और मुझे
साफ़-साफ़ दिख रहा है अपना घर
एक भरी-पूरी दोपहर
कमरे में तैर रही है—महावीरी धूप गन्ध
पत्नी की गोद में—खुला है रामचरित मानस
लगता है
भीतर कोई सूर्यदेही गुलाब गमक रहा है
एक पहचाना स्वर
मुझे अपनी ओर खींच रहा है—
'छबिगृह दीपशिखा जनु बरई ।'

लड़ाई कलम के लिए

मेरे इर्द-गिर्द
खड़ी है—हथियारों से लैस
लहूफरोशों की जमात दर जमात
और मेरे पास
हथियार के नाम पर है—
सिर्फ एक अदद कलम
ऐसी स्थिति में
साफ बात है—लड़ना जरूरी नहीं लगता
लेकिन सवाल है—लड़ें क्यों नहीं
यह सच्चाई है या वहम
न तो मुझे यकीन है और न मेरे दुश्मनों को
वे जीना चाहते हैं—
उन्हें खून और हथियार की ज़रूरत है
मुझे जीना है—
रोटी और कविता के बीच दबोची हुई
अपनी रचना के इकलौते आकाश की सुरक्षा के लिए
मुझे लड़ना है—
एड़ी से चोटी तक उगते हुए
खून और पसीने के लिए
            और आग जो अब तक अनलिखी है
            उसकी दहकती हुई सच्चाइयों में
            जीने के लिए
उन्हें बारूद और बुलेट की आड़ में
अपनी हिफाजत के लिए लड़ना है
मुझे अपने कलम को
सही सावुत रखना है। ०

समय रचना

दिशाएँ भीतर ही भीतर
टूटती हैं
संकेत उगता है
आकाश के चिटखने का
ओठों पर आग लिखने का
क्षण सुलगता है
दृष्टियों में उभरे
कुहरे की काग़ज़ी सतह पर
किरणनुमा पारदर्शी
समय रचने का
संकेत उगता है
आकाश के चिटखने का
दिशायें—
भीतर ही भीतर
टूटती हैं। ०

और सपना टूट गया

बहुत दिन पहले
एक सपना देखा था
—और याद है

    एक फ़रिश्ता
    मुझे गुलाबों के शाही बाग़ तक ले जाकर
    न जाने कहाँ ग़ायब हो गया

अचानक मेरे दाहिने कंधे पर
सोने का एक कबूतर उग आया

गौरैया के नन्हे-नन्हे बच्चों की तरह
झुण्ड के झुण्ड सपने
मेरे इर्द-गिर्द फुदक रहे थे
उनके पंख गुलाब की पंखुड़िया जैसे थे
चोंच सोने से मढ़ी थी
मैं सपने में—
एक सुनहला सपना बुन रहा था
इसी बीच
सफेद हाथियों का एक जुलूस
मेरी ओर चिंघाड़ता हुआ आ रहा था
—और सपना टूट गया

आँख खुलते ही देखा
एक मकड़ी मेरे सामने खिड़की के ऊपर
अपने ही तन्तुजाल मे

एक कोने से दूसरे कोने तक
बेतहाशा भाग रही है—
एक छिपकली हरसिंगार के फूलों जैसे
पंजों पर बल देती है
आहिस्ता-आहिस्ता जीभ लपलपाती
उसकी ओर बढ़ रही है—

मैं सहज भाव से
दोनों को उनकी अपनी-अपनी स्थितियों में
सही मानकर

स्वयं को गैरहाजिर करने की
तैयारी मे जुट गया
बाहर आकर
अखबार के पन्ने सूंघता हूँ
और अकाल झलता हुआ एक देश
मेरी पीठ और पेट में चिपक गया। ०

युद्धशील [वियतनामी मुक्ति संग्राम]

उन्हें महसूस होता है
वे मर गए हैं, वे नहीं हैं
—वे युद्धशील हैं—
काले रीछ जैसा अँधेरा
उन्हें सूँघकर
रोशनी की तलाश में
कहीं और चला गया
उनकी चीख—
ज़िन्दा रहने की एक प्यारी आवाज़
तमाम बनैले सुअरों के कानों से टकरा कर
वापस आ गई
अब वे सुअरों की कैद में हैं
बहुत दूर से हवा में उछाली गई
तमाम नकली आवाज़ों का सिलसिला टूट गया
लावारिस लाश के अतिरिक्त
अब उनकी कोई शिनाख्त नहीं है—
आसमान उन्हें तब भी ढोता है
और उन्हें महसूस होता है
वे मर गए हैं—वे नहीं हैं
वे युद्धशील हैं। •

हवा में उड़ते रक्ताणु

मैं शाम के धुँधलके में
अचानक रुक गया
आकाशवाणी की एक बुलेटिन के बीच का टुकड़ा
मेरे कानों पर चिपक गया
मेरी दृष्टि लैम्पपोस्ट के बल्ब से
अनायास ही जूझकर
आस पास खड़े कई अपरिचित लोगों की
निगाहों से जुड़ जाती है
'युद्ध बिना किसी शर्त के थम गया—
मुझे लगा
जैसे मैं एक ठंडी रक्त-झील में
धँस रहा हूँ
और दिमाग की कई नसें हठात कटकर
सरहद के आर-पार
छटपटा रही हैं
जाफरान की घाटी से टकराकर
लौटी हुई आवाज़ें
अँधेरे का मुँह नोचती है
अन्यमनस्क-सा चलता हुआ मैं
भीतर ही भीतर चुक गया
युद्ध बिना किसी शर्त के थम गया
हवा में उड़ते
अनिश्चय का अन्तराल झलते
असंख्य रक्ताणुओं को बारूद की गन्ध
अच्छी नहीं लगती
अस्तित्व का सटीक और आदिम अर्थ
फूलों-पेड़ों, पत्तियों पर
कलों कारखानों पर
इस्पाती चेतना की तरह फैल गया जम गया
युद्ध बिना किसी शर्त के थम गया। ०

आदमी बनाम आदमी

मेरा नाम
तुम्हारा नाम—वियतनाम वियतनाम
और कलकत्ते की एक खूबसूरत शाम
दोनों के बीच
सैण्डविच होते हुए एहसास के साथ
नगर नायिका के

पुष्प सज्जित जूडे से लटक कर
मरे हुए आत्महन्ता क्षणो की भीड में
नितान्त अचीन्ह, अपरिचित
चेहरो का याद आना
कितना वाहियात है।
—ज़हर मे चुपडी हुइ रोटी के टुकडा जैसी सुबहें
बारूद व धुँए मे भटकती हुइ साँसें
खोइ हुइ राह
कूडो क ढेर जैसे
लोगा के जत्थे पर जत्थे
निरीह, निर्जीव निहत्थे
इनमें कहा कोइ आदमी जैसा नहा दिखता है
अँधेरे को नाप दी गइ र्ष्टियो में
एक जगली भैंसे जैसा कालखण्ड उभरता है
माग-पूँछ में बँधे
आदमी ही आदमी दिखते हें
और सूर्य पिघलकर
रक्त की नदी जैसा
तमाम रक्तप्यासे आठो को समर्पित है
हम सब के करीब
और बहुत करीब
रोशनी के छज्जे पर टिकी सनी-सँवरी एक आवाज है
जा किसी नए अर्थ की मोहताज है
किसी बारीक अर्थ मं
न तो शीरी है, न तो लैला है
न तो मुमताज है
सचमुच,
कौडिया क मोल बिक्ते अस्तित्व की
इस शताब्दी म
एक आदमी की हैसियत से
यह सब कुछ सोचना
कितना वाहियात है। ०

बात उन क्षणों की

म उस सीमान्त की बात नही करता हूँ
जिसे किसी दिन
मेरी चेतना ने छुआ था दुलराया था
म तो उस सीमन्त की बात करता हूँ
जिसे मेरे भावुक आयामों ने
चूमा था, सहलाया था

आज तुम
उस सीमान्त से कुछ दूर अलग
बात करती हो
अपने सिमटे, टूटे, ऐंठे परिवेश की
और म—
अब भी बात करता हूँ
तुम्हारे सीमन्ती अर्थों की
ओठो पर रेंगते आवश की

याद होगा शायद
बहुत दिन पहले
तुमने रोशनी की कइ रेखाओं का
एक बिन्दु पर मिलाया था

आज म
उन क्षणा की बात नही करता हूँ
जिन्ह मन प्यार के दरवाजे तक बुलाया था
म तो अब
उन क्षणों की बात करता हूँ
जिन्होने मेरी तमाम गदराई शामा को
तुम्हारी उँगलियो में बाँधकर
याद नहा
कहाँ-कहाँ बहलाया था
म तो उस सीमन्त की बात करता हूँ
जिसे मने चूमा था सहलाया था। ०

अलग-अलग लम्बे सफर की यत्रणा

इतना लम्बा सफर और हम अचानक
अलग-अलग विपरीत दिशा की ओर मुड गए
हम दोनो के बीच
कइ अनचाहे प्रसग
चुपचाप आकर बैठ गए
अब तक जितने क्षण पिरोए थे
सब के सब टूट गए—
इस दूरी को दर्द का नाम दे गए
और—
सूरज की पहरेदारी मे
रोशनी निथर गइ
व्यस्त है रात की बीमारदारी मे
अँधेरे की तनी हुई शिराएँ
घेरे है, टूट जाने का डर
इतना लम्बा सफर
और हम अचानक अलग-अलग
विपरीत दिशा की ओर मुड गए —
लगता है
हम दोनो को
रास्ते के खामोश चेहरे पर उभरी-उभरी
परछाइयों के घटते-बढते
आकार पी गए
दूर बहुत दूर
टूटकर गिरी प्रश्नगर्भा उल्काएँ
किसी नई पीढी के जन्म दिन की प्रतीक्षा मे
समय का एक-एक क्षण पी गई होंगी
और छटपटाती होंगी
रेतीली घाटी की बाँहो में
बालू के बिस्तर पर
इतना लम्बा सफर
और हम ■

तुम्हारा न होना [हवड़ा स्टेशन की एक शाम]

चींटियों की क़तार जैसी एक भीड़
मेरे क़रीब से गुज़र जाती है
और मेरी दृष्टि अकेलेपन से जूझती हुई
अनायास एक अनमने सन्दर्भ से जुड़ जाती है
मैं यादों की परतों को
आहिस्ता-आहिस्ता उघारता हूँ
और सोचता हूँ
तुम मेरे आस-पास
दिल में, दिमाग़ में कहीं नहीं हो
और चींटियों की क़तार जैसी
एक भीड़
मेरे करीब से गुज़र जाती है—
रोशनी की रंग बिरंगी लकीरों से घिरा
मुसाफ़िरख़ाना बेहद उदास लगता है
ऊपर तेज़ी से चक्कर काटते हुए
बिजली के पंखों पर
किसी आवाज़ का टिक जाना मुमकिन नहीं
इधर-उधर न जाने क्या कुछ देख रहा हूँ—
रोशनी के छोटे छोटे वृत्तों के बीच
यात्राहीन अस्तित्वों की परछाइयाँ थरथराती हैं
आवारा, मज़दूर और यतीम माओं के
रूखे सूखे, निचुड़े स्तनों से चिपके—
तमाम बीमार बेनाम बच्चों को
एक टक निहारता हूँ
और सोचता हूँ—
तुम मेरे आस पास
दिल में दिमाग में कहीं नहीं हो—
और चींटियों की क़तार जैसी
एक भीड़
मेरे करीब से गुज़र जाती है। ०

आकाश कुछ और धँसता है

रोजना की तरह
बिस्तर पर बिछ जाती हुई
किसी जिस्मफरोश औरत-सा माहौल
आधी रात
बेमतलब भाकते हुए कुत्ते-सा
कई प्रश्नों का गिरोह—
ताड़ के पत्तों पर
दम तोड़ती हवा
और पोखर के गँदले पानी में
धँसा हुआ आकाश—
इन सबों का सही अर्थ
कई टुकड़ों में कटा हुआ
अधमरे साँप की तरह छटपटाता है
निरर्थक क्षणों की एक क़तार
बड़ी तेजी से कौंधती है
खिड़की के पर्दे पर चिपका हुआ अँधेरा सरकता है—
और सुबह होते ही
तमाम चेहरे आइने में उतर जाते हैं
कुत्ते दहलीजों पर दुम हिलाते हैं, ऊँघते हैं
पोखर के गँदले पानी में
धँसा हुआ आकाश
कुछ और धँसता है
हवा में उड़ते हुए बहुत सारे अर्थ कहीं नहीं होते
—सिर्फ उनकी अर्थी होती है
आकाश कुछ और धँसता है। •

मसीहानुमा लोगों का जुलूस

हमारे सामने एक लम्बा रास्ता है
जो बहुत सारे रास्तों से मिलता हुआ
किसी अनिश्चित दिशा की ओर जाता है
उस पर चलना—
एक प्रश्न बनकर उभरता है—
लाल, हरे सिगनल की तरह
जो हमें किन्हीं भी सन्दर्भों में
जिन्दा रहने का सकेत देता है
और कभी-कभी
हमारी नियति के एहसास से जोड़ता है
हम कहीं छिटक जाएँ
भटक जाएँ—
इसका कोई कोई ज़िम्मेदार नहीं—
तमाम अजनबी चेहरों की भीड़ को चीरते हुए
कुछ अलग और आगे
कई मुखौटे दीख जाएँ—
तब भी रास्ता सिर्फ रास्ता है
उसके खत्म होने तक
हमारी दृष्टियों का रिश्ता है
हमारे सामने एक लम्बा रास्ता है—
समूचे रास्ते पर
अनायास भीड़ पर भीड़ बिछ गई है
और उसको रौंदता हुआ
चौकन्ना-सा ताकता हुआ
मसीहानुमा लोगों का एक जुलूस—
आगे बढ़ रहा है
नारेबाज़ी से टूटता हुआ
आस पास का सन्नाटा

वडी तेज़ी से आवाज़ों का सैलाव बन जाता है
फ्लैगों और फेस्टूनों से चिपका हुआ पूरा एक युग
इलेक्ट्रिक तार से लटकी मरी चिड़िया की तरह—
हमारी आँख में उतर जाता है
अर्थ क्तरा कर हवा में उड जाता है
हमारे सामने एक लम्बा रास्ता है

हमारे सामने
न तो कोइ फैसला है,
न तो कोइ हासिल है—

हम नही जानते
हमारे समानान्तर जो भी है
वह मूर्ख है या जाहिल है

पता नही क्यों—
हम किसी ऐसे आदमी छाप फरिश्ता की तलाश में
भीड वन जाते हैं
जो हमें भीतर से कुरेद-कुरेद कर
खाता हुआ—
एक देश क आयतन जैसी पूरी भीड को
मलेरिया के कीटाणु समझकर
उस पर जहर छिडकता हुआ
तीर की तरह आगे निकल जाता है
हमसे चिपके हुए
बहुत सारे नन्हे-मुन्ने क्षणो को निगल जाता है

और—
अस्तित्व के सीमान्त पर
हमारी लाशा को
समय का एक वहुत वडा वर्फदार हिस्सा ढँक जाता है
क्तार दर क्तार
पथराये खडे मसीहानुमा लोगों की याद में
रास्ता कुछ और वढ जाता है
हमारे सामने एक लम्बा रास्ता है। ०

सचेतना का उत्ताप

[युद्ध और गर्मी के दिन]

गाँवों-नगरों, पहाड़ों और घाटियों पर
तमाम बेपनाह
बेगुनाह लोगों की गर्दनों पर
किसी हत्यारे की कटार जैसा आकाश झुक गया है—
एक मुखौटाधारी प्रश्न
छाँह में लेटे तमाम उत्तरों को
सचमुच दबोच रहा है
दूसरों के बारे में
कहीं भी, कोई भी
कुछ नहीं सोच रहा है
रेगिस्तान में भटकती—
बेनाम जली भुनी आवाज़ों से
धूप में लिपटी
अग्निगन्धा धारणाओं से
धरती का कलेवर ही नहीं—
मस्तिष्क का समूचा आयतन घिर गया है
—और किसी हत्यारे की कटार जैसा
आकाश झुक गया है
हाँफते, गैरपालतू कुत्तों की निकली जीभों जैसे
अस्तित्वों के सिलसिले—
नन्हें-नन्हें
सफ़ेद अण्डों को मुँह में दाबे

नीचे से ऊपर की ओर उठते हुए
चींटियों के सत्रस्त काफिले—

—ऐसे में कौन किससे गले मिले
आखिर प्यार कहाँ पले !

किसी प्रयोगशाला में
अथवा
शाकुन्तलाओं और सावित्रियों की पलकों तले।

तड़पकर मरे हुए
हरिणों की लाशों को रौंदता
भागा जा रहा है
बौखलाया-सा
एक आदिमयुगी
दाढ़ी वाले शिकारी की तरह सूर्य बेतहाशा
लगता है—
सचेतना का उत्ताप
अन्तिम बिन्दु पर टिक गया है
और—
किसी हत्यारे की कटार जैसा आकाश
झुक गया है
दूर कहीं टँगी हुई मेरी दृष्टि में
सुअर के सौदागर की
लाल लाल आँखें उभर रही हैं
और बलि हो जाने के लिए
किसी कुल-देवता की प्रतिष्ठा पर
—अन्धे विश्वासों की क़ीमत पर
अभी अभी
एक सुअर का बच्चा बिक गया है
तमाम बेपनाह
बेगुनाह लोगों की गर्दनों पर
किसी हत्यारे की कटार जैसा
आकाश झुक गया है ०

सिमटते अन्तराल

प्यार की वल्गाएँ थामे
खड़ी है
असह्य आदिम चेतनाएँ
और तन गई है
प्रत्यचाएँ
हवा में तिरते
सकेतों और सन्दर्भों ने
कई नाम
लिखकर मिटा दिए
बेरहम बहेलिए
अभी-अभी
आस-पास की झाड़ियों से
कई तीर बिंधी कबूतरियों को
झोली में भरकर
चल दिए
और—
उँगलियों के पोरों से
लिपटी हुई
तड़प तड़प कर
मर गईं आस्थाएँ
—तन गई हैं प्रत्यचाएँ । ◦

प्रेमिकाएँ

प्रेमिकाएँ
बर्फ़ की चट्टानों से
बेवजह तराशी हुई आकृतियाँ—
शिल्प के नमूनों जैसी
महज़ नुमाइशी
उनका औरतनुमा होना
हमारी दृष्टियों की गर्माहट से
किसी खास बिन्दु तक फिसलकर
ठंडा और ठोस लगना है
जमीन के कुछ हिस्सों को
कुहरा दबोचकर बैठ जाता है
और—
आकाश की वीर्यप्रभता उफनकर
अस्तित्व के अरक्षित सीमान्तों पर
फैल जाती है—
एक आदिम बोध
बर्फ़ की चट्टानों पर सुलगता है
आकृतियाँ सिमटती हैं
शिल्प गलता है। ■

हाशिए के बीच

विन्दु-विन्दु
नुक्ता दर नुक्ता ज़िन्दगी
लकीर जैसी खिंच गई है
अस्तित्व के नीले पन्ने पर
चारों ओर—
　　और मैं हूँ हाशिए के बीच की
उस लिखावट-सा
जिसे प्यार की
अनाम थरथराहट
दर्द की उँगलियों से
लिख गई है
जिन्दगी लकीर जैसी
खिंच गई है। ०

अस्तित्व की शव-परीक्षा

तुम्हारे दिल और दिमाग़ से
बारूद की गन्ध आ रही है
दिशाओं की कोख से जन्मा युग
गर्भनाल समेत
भागा जा रहा है
और—
पथराई अस्थियों के गुहाद्वार पर
बैठा मसीहा
स्वयं को ज़िन्दा महसूस करने की धुन में
नस-नस में
सुइ चुभो रहा है—
दूर बहुत दूर
रेगिस्तान के आखिरी छोर पर खिले
एक जंगली गुलाब को
सूरज की अन्तिम किरण
चूमकर
सहला कर
चुपचाप उदास दबे पाँव
वापस जा रही है
तुम्हारे दिल और दिमाग़ से
बारूद की गन्ध आ रही है। ०